

रवींद्रनाथ टैगोर जी की जयन्ती (7 मई) पर

## कवींद्र-रवींद्र और उनके विमर्श

**कृष्ण कुमार यादव**

भारतीय संस्कृति के शलाका पुरुषों में रवींद्रनाथ टैगोर का नाम प्रतिष्ठापरक रूप में अंकित है। वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो जीती-जागती किंवदंती बन गए। साहित्यकार-संगीतकार-लेखक-कवि-नाटककार-संस्कृतिकर्मी एवं भारतीय उपमहाद्वीप में साहित्य के एकमात्र नोबेल पुरस्कार विजेता के अलावा उनकी छवि एक प्रयोगधर्मी और मानवतावादी की भी है। तभी तो शब्द और संगीत के इस विलक्षण साधक के लिए पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि - "बड़ा आदमी वह होता है जिसके संपर्क में आने वाले का अपना देवत्व जाग उठता है। रवींद्रनाथ ऐसे ही महान पुरुष थे। वे उन महापुरुषों में थे जिनकी वाणी किसी विशेष देश या संप्रदाय के लिए नहीं होती, बल्कि जो समूची मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए सबको मार्ग बताती हुई दीपक की भाँति जलती रहती है।" वाकई रवींद्रनाथ टैगोर को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। उनकी रचनाधर्मिता का क्षितिज इतना विस्तृत है कि आज भी उनकी प्रासंगिकता जस-की-तस बरकरार है। कोई भी विधा उनकी लेखनी से अछूती नहीं रही। विभिन्न विधाओं में उन्होंने 141 पुस्तकें लिखीं, जो 27 खंडों में प्रकाशित हुईं। इनमें 15 काव्य-संकलन ; 12,000 कविताएं, 11 गीत-संग्रह ; 2000 गीतद्वय, 47 नाटक, 34 लेख-निबंध-अलोचना संग्रह, 13 उपन्यास, 12 कहानी-संग्रह, 6 यात्रा-वृत्तांत व 3 खण्डों में आत्मकथा शामिल हैं। रवींद्रनाथ की अधिकतर काव्य-रचनाएं 'गीत-वितान' व 'संचयिता' में संग्रहित हैं। यह एक अजीब संयोग है कि सभी विधाओं में समान अधिकार रखने वाले टैगोर को नोबेल पुरस्कार उनकी काव्य-कृति 'गीतांजलि' पर मिला और आज भी साहित्य का नोबेल पुरस्कार पाने वाले वे भारतीय उपमहाद्वीप के इकलौते साहित्यकार हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई 1861 को बंगाल के जोरासांको में हुआ। मनीषी द्वारकानाथ ठाकुर और माता शारदा देवी की 14वीं संतान के रूप में रवींद्रनाथ का जन्म हुआ। रवींद्रनाथ ने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जहाँ परंपराएं व संस्कार थे तो आधुनिकता भी थी। भौतिकता की चकाचौंध थी तो अध्यात्म का परिवेश था, तभी तो उनकी आठवीं तक की शिक्षा घर पर ही हुई और आगे की शिक्षा के लिए वे इंग्लैण्ड भेजे गए। प्राचीन वैदिक साहित्य के साथ ही पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव भी उनके खून में था। संगीत-कला-साहित्य की अनुगूंज वातावरण में सर्वत्र विद्यमान थी, यँ ही सात वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने जीवन की पहली कविता नहीं रच डाली। स्वयं रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि-मेरा परिवार हिन्दू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता एवं ब्रिटिश सभ्यता की त्रिवेणी था।

रवींद्रनाथ टैगोर पर अपने परिवार की सामासिक संस्कृति का बचपन से ही गहरा प्रभाव पड़ा। सांवले चेहरे के बीच उनकी आँखें मानो हर पल कुछ ढूँढना चाहती थीं। कुछ आत्म, कुछ परमात्म और इससे भी परे जीवन की विसंगतियों को देखकर विचलित होने का भाव। यही कारण है कि उनका विलक्षण व्यक्तित्व एकांगी नहीं बल्कि बहुआयामी रहा। एक साथ ही उन्होंने साहित्य, संगीत, चित्रकला, नाट्य, शिक्षा सभी में महारत हासिल की। रवीन्द्र सिर्फ विधाओं के ही यायावर नहीं थे बल्कि जीवन में भी यायावर थे। उन्होंने 13 बार विश्व भ्रमण किया। 'रवीन्द्र-संगीत' की गणना आज भी बंगाल की लोकप्रिय संगीत-शैलियों में होती है। रवींद्रनाथ के गीतों के अनुवाद जर्मनी फ्रांस, जापान, इटली आदि में किए गए हैं।

इटली के कुछेक चित्रकारों ने तो उनके गीतों के आधार पर चित्र रचना तक की है। तभी तो कहते हैं कि रवींद्रनाथ जितना पढ़े गए हैं, उससे कहीं ज्यादा सुने गए हैं। आज भी टैगोर की रचनाओं के पुनर्वर्षण के स्वतः स्फूर्त प्रयास निरंतर चल रहे हैं। उनकी रचनाएं कल भी मनुष्य को झकझोरती थीं और आज भी झकझोर रही हैं। सत्यजीत रे जैसे दिग्गज फिल्मकार ने उनकी रचनाओं पर चारूलता, घरे बाहिरे व तीन कन्या जैसी शानदार फिल्में बनाईं तो राजा, रक्तकरबी, विसर्जन, डाकघर जैसी नाट्यकृतियों का मंचन आज भी उतना ही प्रासंगिक दिखाई देता है। यहाँ तक कि अपने रंग-जीवन के अंतिम वर्षों में हबीब तनवीर जैसे विख्यात निर्देशक ने भी 'राजरक्त' नाम से टैगोर के नाटक 'विसर्जन' की मंच प्रस्तुत की और उसे आरंभिक प्रदर्शन के बाद मांजते रहे। वाकई पीढ़ियों के अंतराल के बाद भी रवींद्रनाथ टैगोर की कृतियों का मंचन-संचयन यही दर्शाता है कि उनकी कृतियों की नई व्याख्याओं की गुंजाइश सदैव बनी रहेगी और वे अपनी प्रासंगिकता कभी नहीं खोएंगी। ऐसे में जो लोग रवींद्रनाथ टैगोर की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, उन्हें भी रवींद्रनाथ के पक्ष में बहने वाली बयार चकित-विस्मित करती रहती है। अगर आज भी रवींद्रनाथ के गीतों-कविताओं को गायक-गायिकाएं सजा-सँवार रहे हैं, उनके नाटक नए सिरे से खेले जा रहे हैं, 'काबुलीवाला' और अन्य कहानियाँ लोगों के मर्म को छू रही हैं, 'गोरा' जैसे उपन्यास नए विमर्श और पाठ के लिए उकसाते हैं, उनका बाल-साहित्य बहुतांश का मन मोहता है, उनकी कृतियों को लेकर डाक-टिकट जारी हो रहे हैं तो यह मानना पड़ेगा कि टैगोर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं एवं वे हर समय हमारे सम्मुख नित नए रूपों में अवतरित होते रहते हैं। यहाँ टैगोर के बाल-साहित्य पर लिखे डब्ल्यू0 बी0 यीट्स के शब्द गौर करने लायक हैं- "वस्तुतः जब वह बच्चों के विषय में बातें करते हैं तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह संतों के विषय में भी बात नहीं कर रहे हैं।"

एक जमींदार परिवार से होते हुए भी रवींद्रनाथ उदार दृष्टि के थे। उनका कवि-मन जीवन की सहजता में विश्वास करता था। वे लोगों से घुलने-मिलने और उनकी जीवन-संस्कृति को समझने की कोशिश करते थे। फिर वह चाहे मुंडा आदिवासियों के मध्य रहकर उनकी संस्कृति को समझना हो, ग्राम हितैषी सभा के माध्यम से गाँवों में स्कूल, अस्पताल आदि की स्थापना हो, ग्राम संसद के तहत पंचायती राज को मूर्त रूप देना हो या नोबेल पुरस्कार में प्राप्त धन को शान्तिनिकेतन को दान देकर उससे भारत के प्रथम कृषि बैंक की स्थापना हो। रवींद्रनाथ एक भविष्यदृष्टा थे। रवींद्रनाथ ने नारी-सशक्तीकरण, नारी शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, देवदासी इत्यादि को लेकर प्रखरता से कलम चलाई। रक्तकरबी, गोरा, श्यामा, चंडालिका, चोखेर-बाली, पुजारिनी, घरे बाइरे इत्यादि उनकी चर्चित रचनाओं को इसी क्रम में देखा जा सकता है। टैगोर की संवेदनाएं सिर्फ साहित्य-कला-संगीत तक ही सीमित नहीं थीं, वे उसे वास्तविकता के धरातल पर देखना चाहते थे। इसी कारण मानवीय गरिमा और और सम्मान के कवि रूप में वह सकल विश्व में विख्यात हैं। विज्ञान में वे विश्वास करते थे पर नैतिकता की कीमत पर नहीं।

रवींद्रनाथ टैगोर का स्वतंत्रता-आंदोलन में भी अप्रतिम योगदान रहा। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वे प्राध्यापक रहे, अंग्रेजियत के ताने-बाने को काफी नजदीक से महसूस किया पर देश-प्रेम की उत्कट अभिलाषा उनके अंदर व्याप्त थी। जहाँ कांग्रेस के नेता व अन्य भाषणों द्वारा लोगों में देशभक्ति की भावना को उभार रहे थे, वहीं उनके क्रांतिधर्मी गीत लोगों की रगों में आजादी का जोश भर देते थे। उन्होंने गीत के माध्यम से आह्वान किया था- "जोदी तोर डाक शुने केउ ना आशे, तबे ऐकला चलो रे।" 1905 के 'बंग-भंग' आंदोलन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों द्वारा एक दूजे को राखी बाँधकर एकता का प्रदर्शन उनकी ही सोच थी। वे एक साथ ही क्रांतिकारी थे और उदारवादी भी। जलियांवाला बाग हत्याकांड के विरोध में नाइट हुड के तौर पर दी गई 'सर' उपाधि को लौटाने में उन्होंने कोई देरी न दिखाई। सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी भी टैगोर की रचनाओं से प्रेरणा पाते थे। भगत सिंह ने अपनी जेल डायरी में टैगोर का एक लेख 'पूँजीवाद और उपभोक्तावाद' अपने हाथों से लिख रखा था। यही नहीं टैगोर की इस उक्ति को भी भगत सिंह ने दर्ज किया था कि "जो न्यायधीश अपनी तजवीज की हुई सजा के दर्द को नहीं जानता, उसे सजा देने का हक नहीं।" यह अनायास ही नहीं था कि काकोरी कांड में सजा काट रहे रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, रोशन लाल इत्यादि क्रांतिकारी 'सरफरोशी की तमन्ना' के साथ-

साथ रवींद्रनाथ टैगोर व काजी नजरूल इस्लाम के क्रांतिधर्मी गीतों को गाकर वातावरण में देश-भक्ति का उन्माद फैलाते रहते। इतिहास गवाह है कि रवींद्रनाथ टैगोर ने बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित राष्ट्र-गीत 'वन्दे मातरम' की धुन तैयार की और स्वयं 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में इसे पहली बार गाया। राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' के रचयिता भी टैगोर ही हैं। टैगोर को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वे भारत और बांग्लादेश दो राष्ट्रों के राष्ट्रगान के रचयिता हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर की मातृभाषा बांग्ला थी, पर हिन्दी साहित्य से भी उनका लगाव था। किशोर-वय से ही वे वाल्मीकि-कालिदास समेत भारतीय काव्यधारा की विशद परंपरा के साथ-साथ जयदेव, विद्यापति, कबीर और नानक की परंपरा से जुड़े। अपने समकालीन तमाम हिन्दी-साहित्यकारों से भी टैगोर का संपर्क बना रहा। वे खुद कहते थे कि-“मैं हिन्दी भाषी लोगों के निकट संपर्क में आने हेतु बेहद उत्सुक हूँ। यहाँ हम लोग संस्कृति-साहित्य प्रचार के लिए जो भी कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। हमारी दिली इच्छा है कि हिंदी भाषी लोग भी यहाँ आँ, हमारे अनुभव में हिस्सा बटाएँ तथा अपने अनुभव से हमें भी लाभान्वित करें।“ आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्यकारों से उनका निरंतर संपर्क रहा और इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य के मर्म को समझा। अज्ञेय व टैगोर की मुलाकात पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही कराई थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय के साथ-साथ वे माखनलाल चतुर्वेदी व जैनेन्द्र से भी मुलाकात किए। टैगोर हिन्दी गद्य को समझने के लिए प्रेमचंद से मिलने को काफी उत्सुक थे, पर दोनों के मिलन का कोई संयोग अंत तक नहीं बन सका। इसे साहित्य की एक विडम्बना के रूप में ही माना जाएगा। उनकी दिली इच्छा थी कि साहित्य की भाषा कुछ भी हो, पर यदि वह लोगों की संवेदनाओं को झंकृत करता है तो अन्य भाषाओं में भी उसका अनुवाद होना चाहिए, ताकि लोग उससे लाभान्वित हो सके। रवींद्रनाथ ने स्वयं कबीर, मीरा विद्यापति का बांग्ला में अनुवाद किया। कबीर की वाणी से तो वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी रचनाओं का 'हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर' शीर्षक से अंग्रेजी अनुवाद भी किया।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में हिन्दी की गौरवमयी परंपरा को टैगोर समग्र देश ही नहीं विश्व के सामने भी लाना चाहते थे। एक तरफ वे कबीर-वाणी को अंग्रेजी में अनुदित करते हैं तो दूसरी तरफ उन्हें बघेलखंड के कवि जानदास के पद भी प्रभावित करते हैं। टैगोर ने स्वयं लिखा कि-“जानदास की रचनाएं सुनकर मुझे अनुभव हुआ कि आजकल की आधुनिक कविता का परिचय इनकी कविताओं में मिलता है और ये कविताएं सर्वदा के लिए आधुनिक ही हैं।“ गीत-विधा पर टैगोर की जबरदस्त पकड़ थी। वे अन्य भाषाओं में रचित गीतों की संजीदगी से प्रभावित भी होते थे। हिन्दी साहित्य में गीतों की परंपरा पर उनका कथन उद्धृत करना उचित होगा-“इसमें कोई संशय नहीं है कि एक समय हिन्दी भाषा में गीत साहित्य का आविर्भाव हुआ है, उसके गले में अमरसभा का वारमल्य है।“ पर इसके साथ ही वे सचेत भी करते हैं कि “आज वह अनादर के कारण बहुत कुछ ढका हुआ है। इसका उद्धार अति-आवश्यक है, जिससे भारतवर्ष के अ-हिन्दी लोग भी भारत के इस चिरंतन साहित्य के उत्तराधिकार के गौरव के भागीदार हों।“ साहित्य की जीवंतता के लिए उसमें प्रवाह व सहजता का होना बेहद जरूरी है। यदि साहित्य में लचीलापन न हो तो उसके चटकने में देरी नहीं लगती। इसी प्रकार अलंकारों से परिपूर्ण साहित्य वर्ग-विशेष तक ही सीमित रह जाता है, जन-सरोकारों से वह कट जाता है। रवींद्रनाथ टैगोर भी साहित्य में अलंकारों की इस कृत्रिमता के पक्षधर नहीं थे। एक बार उन्होंने बिहारी की रचनाओं के बारे में कहा कि-“कुछ भी क्यों न हो, बिहारी सतसई जैसे ग्रंथ मेरे लिए रुचिकर सिद्ध नहीं हुए, विशेषकर किसी-किसी दोहे के चार-चार, पाँच-पाँच अर्थों के विषय में वाद-विवाह मुझे कुछ जंचा नहीं।“ वस्तुतः टैगोर कवित्व को साधना रूप में देखते थे। वह कहते थे कि मैं गीत गाने वाली चिड़िया जैसा हूँ, मेरा गीत कहीं बाहर नहीं बल्कि पत्तों के परदे में है, जहाँ बैठकर चिड़िया अनायास ही गाने लगती है। वे मानवतावादी विचारधारा के प्रबल पोषक थे। हिन्दी साहित्य के छायावाद युग पर टैगोर का प्रभाव देखा जा सकता है। स्वयं महादेवी वर्मा ने अपने ग्रंथ 'पथ के साथी' में टैगोर को स्मरण करते हुए उनके प्रति अपने उद्गार व्यक्त किए हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर (7 मई 1861-8 अगस्त 1941) की प्रतिभा किसी देश-काल की मोहताज नहीं थी। उन्होंने भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा को इसकी उँचाईयों तक पहुँचाया और अंग्रेजी भारत में रहते हुए भी साहित्य का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर न सिर्फ स्वतंत्र-चेतना का उद्गार किया बल्कि पराधीन भारत के आहत स्वाभिमान को एक बार फिर गर्व से अपना सिर उठाने का अवसर दिया। यह सोचने वाली बात है कि अगर बीसवीं शताब्दी के शुरू में बांग्ला जैसी प्रांतीय भाषा में एक ऐसा विश्वस्तरीय साहित्यकार हो सकता था जिसने साहित्य का सर्वोच्च सम्मान अर्जित कर नए प्रतिमान गढ़े हों, तो यह भारत की भाषिक बहुलता और भारतीय भाषाओं की जीवंत ऊर्जा को रेखांकित करता है। एक तरफ वे प्रकृति और उसके रहस्य का गीत गाते हैं तो वहीं उनके साहित्य में मानव जीवन की बुनियादी चिंतार्यें भी हैं। अनेक मामलों में उनकी समझ अपने युग के सभी विचारकों, आलोचकों, रचनाकारों और कला मनीषियों के विचारों की सीमाओं को भेदती हुई मनुष्यत्व के मर्म तक गयी है। धर्म, शिक्षा, राष्ट्र, अध्यात्म, मानवतावाद, सार्वभौम मनुष्य इत्यादि को लेकर उनके विचारों की आज देश-दुनिया में विशेष प्रासंगिकता है और बदलते परिप्रेक्ष्य में भी उन पर व्यापक पुनर्विचार और उसके प्रचार की आवश्यकता है। यदि टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने के लगभग एक सदी के पश्चात भी भारतीय उपमहाद्वीप में किसी साहित्यकार को यह खिताब नहीं मिला तो यह स्वयं में टैगोर की प्रासंगिकता को कायम रखती है।

**कृष्ण कुमार यादव,  
निदेशक डाक सेवाएँ,**

**राजस्थान पश्चिमी क्षेत्र, जोधपुर -342001**

**मो0- 09413666599 ई-मेल: kkyadav.t@gmail.com**

कृष्ण कुमार यादव : भारत सरकार में निदेशक। प्रशासन के साथ-साथ साहित्य, लेखन और ब्लॉगिंग के क्षेत्र में भी प्रवृत्त। विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-संग्रह, 2006 व 2007), 'India Post : 150 Glorious Years' (2006), 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा', 'जंगल में क्रिकेट' (बाल-गीत संग्रह, 2012) व '16 आने 16 लोग' (निबंध-संग्रह, 2014)।

देश-विदेश की प्रायः अधिकतर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और इंटरनेट पर वेब पत्रिकाओं व ब्लॉग पर रचनाओं का निरंतर प्रकाशन। शताधिक पुस्तकों/संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, जोधपुर व पोर्टब्लेयर और दूरदर्शन से कविताएँ, वार्ता, साक्षात्कार का समय-समय पर प्रसारण। व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक पुस्तक "बढ़ते चरण शिखर की ओर : कृष्ण कुमार यादव" (सं0-दुर्गाचरण मिश्र, 2009) प्रकाशित।

उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा "अवध सम्मान", पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा "साहित्य-सम्मान", छत्तीसगढ़ के राज्यपाल श्री शेखर दत्त द्वारा "विज्ञान परिषद शताब्दी सम्मान", परिकल्पना समूह द्वारा "दशक के श्रेष्ठ हिन्दी ब्लॉगर दम्पति" सम्मान, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, भूटान में "परिकल्पना सार्क शिखर सम्मान", विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर, बिहार द्वारा डॉक्टरेट (विद्यावाचस्पति) की मानद उपाधि, भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा "डॉ० अम्बेडकर फेलोशिप राष्ट्रीय सम्मान" साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, राजस्थान द्वारा "हिंदी भाषा भूषण", वैदिक क्रांति परिषद, देहरादून द्वारा "श्रीमती सरस्वती सिंहजी

सम्मान", भारतीय बाल कल्याण संस्थान द्वारा "प्यारे मोहन स्मृति सम्मान", राष्ट्रीय राजभाषा पीठ इलाहाबाद द्वारा "भारती रत्न", अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति मथुरा द्वारा "कविवर मैथिलीशरण गुप्त सम्मान", आगमन संस्था, दिल्ली द्वारा "दुष्यंत कुमार सम्मान", विश्व हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद द्वारा "साहित्य गौरव" सम्मान, सहित विभिन्न प्रतिष्ठित सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं द्वारा विशिष्ट कृतित्व, रचनाधर्मिता और प्रशासन के साथ-साथ सतत् साहित्य सृजनशीलता हेतु शताधिक सम्मान और मानद उपाधियाँ प्राप्त।

संपर्क : कृष्ण कुमार यादव, निदेशक डाक सेवाएँ, राजस्थान पश्चिमी क्षेत्र, जोधपुर-342001 मो0- 09413666599  
ई-मेल: kkyadav.t@gmail.com फेसबुक : <https://facebook.com/krishnakumaryadav1977>